

Chapter तीन

भूमि गीत

इस अध्याय में यह बताया गया है कि पृथ्वी ने किस तरह उन अनेक राजाओं की मूर्खता देखी जो उसे जीतने पर तुले थे। इसमें यह भी बताया गया है कि यद्यपि कलियुग दोषों से पूर्ण है, किन्तु हरि-नाम के कीर्तन से वे सारे दोष नष्ट हो जाते हैं।

बड़े-बड़े राजा जो मृत्यु के खिलौने हैं अपने छः आन्तरिक शत्रुओं—पाँच इन्द्रियाँ तथा मन—का दमन करना चाहते हैं। फिर वे यह कल्पना करने लगते हैं कि इसके बाद वे पृथ्वी तथा उसके सारे समुद्रों को जीत लेंगे। उनकी झूठी आशाएँ देख कर पृथ्वी उन पर हँसती है क्योंकि अन्ततः उन्हें यह लोक छोड़ कर अन्यत्र जाना होगा जैसाकि विगत बड़े बड़े राजे तथा बादशाह जा चुके हैं। यही नहीं, पृथ्वी को या इसके किसी खण्ड को हड़प लेने के बाद पिता, पुत्र, भाई, मित्र तथा सम्बन्धी उसके लिए परस्पर झगड़ते हैं।

इतिहास के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि सारी सांसारिक उपलब्धियाँ नश्वर हैं और इस सहज निष्कर्ष से वैराग्य की भावना उत्पन्न होती है। अन्ततोगत्वा किसी भी जीव के लिए जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य भगवान् कृष्ण की शुद्ध भक्ति है, जो सारे अमंगलों को विनष्ट करती है। सत्ययुग में धर्म पूर्ण था जिसमें सत्य, दया, तपस्या तथा दान के चारों पैर अभी तक विद्यमान थे। त्रेता के बाद हर युग के धार्मिक गुणों में एक चौथाई ह्रास आता गया। कलियुग में धर्म के पैरों में केवल एक चौथाई शक्ति रह गई है किन्तु इस युग के अग्रसर होने पर यह भी समाप्त हो जायेगी। सत्ययुग में सतोगुण प्रधान रहता है और त्रेतायुग में रजोगुण। द्वापर युग में रजो तथा तमोगुण का मिश्रण प्रधान रहता है और कलियुग में तमोगुण प्रधान रहता है। कलियुग में नास्तिकता, समस्त वस्तुओं की लघुता तथा निकृष्टता एवं जननांगों और उदर के प्रति आसक्ति अत्यन्त मुखर रहते हैं। कलि के प्रभाव से दूषित जीव भगवान् हरि को नहीं पूजते। यद्यपि भगवन्नाम का कीर्तन करने और उनकी शरण में जाने से सारे बन्धन से छुटकारा मिल सकता है और परम गन्तव्य की सहज प्राप्ति हो सकती है। किन्तु यदि कलियुग में किसी तरह से बद्धजीवों के हृदयों में भगवान् प्रकट हो जाते हैं, तो इस युग में व्याप्त देश, काल तथा व्यक्ति के सारे दोष विनष्ट हो जाते हैं। कलियुग दोषों का सागर है किन्तु इसमें एक महान् गुण है—कृष्ण-नाम का कीर्तन करने से ही मनुष्य सारी भौतिक संगति से उद्धार पा लेता है और परब्रह्म को प्राप्त करता है। सत्ययुग में जो कुछ ध्यान से, त्रेता में

यज्ञ करने से तथा द्वापर में मन्दिर पूजा से प्राप्त होता था, उसे कलियुग में केवल हरि-कीर्तन द्वारा आसानी से प्राप्त किया जा सकता है।

श्रीशुक उवाच

दृष्ट्वात्मनि जये व्यग्रानृपाहसति भूरियम् ।

अहो मा विजिगीषन्ति मृत्योः क्रीडनका नृपाः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; दृष्ट्वा—देख कर; आत्मनि—अपने आपमें; जये—विजय में; व्यग्रानृ—व्यस्त; नृपान्—राजाओं को; हसति—हँसती है; भूः—पृथ्वी; इयम्—यह; अहो—ओह; मा—मुझको; विजिगीषन्ति—जीतना चाहते हैं; मृत्योः—मृत्यु के; क्रीडनकाः—खिलौने; नृपाः—राजा।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : इस जगत के राजाओं को अपने पर विजय प्राप्त करने के प्रयास में व्यस्त देख कर, पृथ्वी हँसने लगी। उसने कहा : “जरा देखो तो इन राजाओं को जो मृत्यु के हाथों में खिलौनों जैसे हैं, मुझ पर विजय पाने की इच्छा कर रहे हैं!”

काम एष नरेन्द्राणां मोघः स्याद्विदुषामपि ।

येन फेनोपमे पिण्डे येऽतिविश्रम्भिता नृपाः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

कामः—काम; एषः—यह; नर-इन्द्राणाम्—मनुष्यों के शासकों की; मोघः—असफलता; स्यात्—हो जाती है; विदुषाम्—विद्वानों के; अपि—भी; येन—जिस (काम) से; फेन-उपमे—क्षणिक बुलबुले के सदृश; पिण्डे—इसपिण्ड में; ये—जो; अति-विश्रम्भिताः—पूरी तरह विश्वास करते हुए; नृपः—राजागण।

“मनुष्यों के महान् शासक, यहाँ तक कि जो विद्वान भी हैं, भौतिक कामेच्छा के कारण हताशा तथा असफलता को प्राप्त होते हैं। ये राजा काम से प्रेरित होकर, मांस के मृत पिण्ड में, जिसे हम शरीर कहते हैं, अत्यधिक आशा तथा श्रद्धा रखते हैं यद्यपि भौतिक ढाँचा जल पर तैरते फेन के बुलबुलों के समान क्षणभंगुर है।”

पूर्व निर्जित्य षड्वर्ग जेष्यामो राजमन्त्रिणः ।

ततः सचिवपौराप्तकरीन्द्रानस्य कण्टकान् ॥ ३ ॥

एवं क्रमेण जेष्यामः पृथ्वीं सागरमेखलाम् ।

इत्याशाबद्धहृदया न पश्यन्त्यन्तिकेऽन्तकम् ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

पूर्वम्—सर्वप्रथम; निर्जित्य—जीत कर; षट्-वर्गम्—पाँच इन्द्रियाँ तथा मन; जेष्यामः—हम जीत लेंगे; राज-मन्त्रिणः—राजा के मंत्रियों को; ततः—तब; सचिव—निजी सचिवों; पौर—राजधानी के नागरिकों; आप्त—मित्रों; करि-इन्द्रान्—हाथी रखने वालों; अस्य—छुटकारा पाकर; कण्टकान्—काँटों; एवम्—इस तरह; क्रमेण—धीरे धीरे; जेष्यामः—जीत लेंगे; पृथ्वीम्—पृथ्वी को; सागर—समुद्र रूपी; मेखलाम्—मेखला (कमर की पेटी); इति—इस तरह सोचते हुए; आशा—आशा से; बद्ध—बँधे; हृदयाः—हृदय वाले; न पश्यन्ति—नहीं देखते; अन्तिके—निकटस्थ; अन्तकम्—अपना अन्त।

“राजे तथा राजनीतिज्ञ यह कल्पना करते हैं, “सर्वप्रथम मैं अपनी इन्द्रियों तथा मन को जीतूँगा; फिर मैं अपने मुख्य मंत्रियों का दमन करूँगा और अपने सलाहकारों, नागरिकों, मित्रों तथा सम्बन्धियों एवं अपने हाथियों के रखवालों रूपी कंटकों से अपने को मुक्त कर लूँगा। इस तरह मैं धीरे धीरे पूरी पृथ्वी को जीत लूँगा।” चूँकि इन नेताओं के हृदयों में बड़ी-बड़ी आशाएँ रहती हैं अतएव ये पास ही खड़ी प्रतीक्षारत मृत्यु को नहीं देख पाते।

तात्पर्य : दृढ़-संकल्प राजनीतिज्ञ, तानाशाह तथा सैन्य, प्रमुख आत्मानुशासन के साथ, कठिन तप तथा त्याग करते हैं जिससे शक्ति के लिए उनके लोभ की पूर्ति हो सके। तब वे समुद्र, स्थल, वायु तथा आकाश पर अधिकार करने के लिए बड़े-बड़े राष्ट्रों को भिड़ा देते हैं। यद्यपि ये राजनीतिज्ञ तथा उनके अनुयायी शीघ्र ही कालकवलित हो जायेंगे क्योंकि इस जगत में जन्म तथा मृत्यु अपरिहार्य हैं, किन्तु वे क्षणिक यश के लिए अपना उन्मादी संघर्ष जारी रखते हैं।

समुद्रावरणां जित्वा मां विशन्त्यब्धिमोजसा ।

कियदात्मजयस्यैतन्मुक्तिरात्मजये फलम् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

समुद्र-आवरणाम्—समुद्र द्वारा सीमाबद्ध; जित्वा—जीत कर; माम्—मुझमें; विशन्ति—प्रवेश करते हैं; अब्धिम्—समुद्र को; ओजसा—अपने बल से; कियत्—कितना; आत्म-जयस्य—आत्मा पर विजय का; एतत्—यह; मुक्तिः—मुक्ति; आत्म-जये—आत्मा पर विजय का; फलम्—फल।

“ये गर्वित राजागण मेरे तल पर सारी भूमि को जीत लेने के बाद, समुद्र को जीतने के लिए बलपूर्वक समुद्र में प्रवेश करते हैं। भला उनके ऐसे आत्मसंयम से क्या लाभ जिसका लक्ष्य राजनीतिक शोषण हो? आत्मसंयम का वास्तविक लक्ष्य तो आध्यात्मिक मुक्ति है।”

यां विसृज्यैव मनवस्तत्सुताश्च कुरुद्वह ।

गता यथागतं युद्धे तां मां जेष्यन्त्यबुद्धयः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

याम्—जिसको; विसृज्य—त्याग कर; एव—निस्सन्देह; मनवः—मनुष्यगण; तत्-सुताः—उनके पुत्र; च—भी; कुरु-उद्वह—हे कुरुश्रेष्ठ; गताः—चले गये; यथा-आगतम्—जिस तरह वे पहले आये; युद्धे—युद्ध में; ताम्—उसको; माम्—मुझ पृथ्वी को; जेष्यन्ति—जीतने का प्रयास करते हैं; अबुद्धयः—अज्ञानी।

हे कुरुश्रेष्ठ, पृथ्वी आगे कहती है, “यद्यपि भूतकाल में बड़े-बड़े पुरुष तथा उनके वंशज इस संसार से मुझे छोड़ कर, उसी असहायवस्था में चले गये जिस रूप में इसमें आये थे, किन्तु आज भी मूर्ख लोग मुझे जीतने का प्रयास कर रहे हैं।

मत्कृते पितृपुत्राणां भ्रातृणां चापि विग्रहः ।

जायते ह्यसतां राज्ये ममताबद्धचेतसाम् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

मत्-कृते—मेरे हेतु; पितृ-पुत्राणाम्—पिता तथा पुत्र के बीच; भ्रातृणाम्—भाइयों के बीच; च—तथा; अपि—भी; विग्रहः—झगड़ा; जायते—उठ खड़ा होता है; हि—निस्सन्देह; असताम्—भौतिकतावादियों के बीच; राज्ये—राज्य में; ममता—स्वामित्व बोध के कारण; बद्ध—बद्ध; चेतसाम्—हृदयों वाले।

“मुझे जीतने के उद्देश्य से भौतिकतावादी लोग परस्पर लड़ते हैं। पिता अपने पुत्र का विरोध करता है और भाई एक-दूसरे से झगड़ते हैं क्योंकि उनके हृदय राजनीतिक शक्ति पाने के लिए बँधे रहते हैं।”

ममैवेयं मही कृत्स्ना न ते मूढेति वादिनः ।

स्पर्धमाना मिथो घ्नन्ति म्रियन्ते मत्कृते नृपाः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

मम—मेरा; एव—निस्सन्देह; इयम्—यह; मही—पृथ्वी; कृत्स्ना—पूरी; न—नहीं; ते—तुम्हारी; मूढ—रे मूर्ख; इति वादिनः—इस प्रकार बोलते; स्पर्धमानाः—लड़ते-झगड़ते; मिथः—परस्पर; घ्नन्ति—मार डालते हैं; म्रियन्ते—मारे जाते हैं; मत्-कृते—मेरे लिए; नृपाः—राजे।

“राजनीतिक लोग एक-दूसरे को ललकारते हैं “यह सारी भूमि मेरी है। अरे मूर्ख। यह तुम्हारी नहीं है।” इस तरह वे एक-दूसरे पर हमला करते हैं और मर जाते हैं।

तात्पर्य : इस श्लोक में उस संसारी राजनीतिक मनोवृत्ति को उजागर किया गया है, जिससे संसार में असंख्य विवादों को प्रोत्साहन मिलता है। उदाहरणार्थ, श्रीमद्भागवत के इस के समय, छोटे-से फाकलैंड द्वीप-समूह के कारण अंग्रेजी तथा अर्जेन्टीना की फौजें घमासान युद्ध कर रही हैं।

वस्तुतः भगवान् सारी भूमि के स्वामी हैं। निस्सन्देह, ईश-भावनाभावित जगत में भी राजनीतिक सीमाएँ पाई जाती हैं। लेकिन ऐसे ईश-भावनाभावित वातावरण में राजनैतिक तनाव बहुत हद तक दूर हो जाते हैं और सारे देशों के लोग एक-दूसरे का स्वागत करते हैं और शान्तिपूर्वक रहने के एक-दूसरे के अधिकार का आदर करते हैं।

पृथुः पुरुरवा गाधिर्नहुषो भरतोऽर्जुनः ।

मान्धाता सगरो रामः खट्वाङ्गो धुन्धुहा रघुः ॥ ९ ॥

तृणबिन्दुर्ययातिश्च शर्यातिः शन्तनुर्गयः ।

भगीरथः कुवल्याश्वः ककुत्स्थो नैषधो नृगः ॥ १० ॥

हिरण्यकशिपुर्वृत्रो रावणो लोकरावणः ।

नमुचिः शम्बरो भौमो हिरण्याक्षोऽथ तारकः ॥ ११ ॥

अन्ये च बहवो दैत्या राजानो ये महेश्वराः ।

सर्वे सर्वविदः शूराः सर्वे सर्वजितोऽजिताः ॥ १२ ॥

ममतां मय्यवर्तन्त कृत्वोच्चैर्मर्त्यधर्मिणः ।

कथावशेषाः कालेन ह्यकृतार्थाः कृता विभो ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

पृथुः पुरुरवाः गाधिः—महाराज पृथु, पुरुरवा तथा गाधि; नहुषः भरतः अर्जुनः—नहुष, भरत तथा कार्तवीर्य अर्जुन;
 मान्धाता सगरः रामः—मान्धाता, सगर तथा राम; खट्वाङ्गः धुन्धुहा रघुः—खट्वांग, धुन्धुहा तथा रघु; तृणबिन्दुः ययातिः
 च—तृणबिन्दु तथा ययाति; शर्यातिः शन्तनुः गयः—शर्याति, शन्तनु तथा गय; भगीरथः कुवलयाश्वः—भगीरथ तथा
 कुवलयाश्व; ककुत्स्थः नैषधः नृगः—ककुत्स, नैषध तथा नृग; हिरण्यकशिपुः वृत्रः—हिरण्यकशिपु तथा वृत्रासुर;
 रावणः—रावण; लोक-रावणः—जिसने सारे जगत को रुला मारा; नमुचिः शम्बरः भौमः—नमुचि, शम्बर तथा भौम;
 हिरण्याक्षः—हिरण्याक्ष; अथ—तथा; तारकः—तारक; अन्ये—दूसरे; च—भी; बहवः—अनेक; दैत्याः—दैत्यगण;
 राजानः—राजे; ये—जो; महा-ईश्वराः—महान् नियन्ता; सर्वे—वे सभी; सर्व-विदः—सबकुछ जानने वाले; शूराः—वीर;
 सर्वे—सभी; सर्व-जितः—सबों को जीतने वाले; अजिताः—न जीते जा सकने योग्य; ममताम्—ममत्व; मयि—मेरे लिए;
 अवर्तन्त—वे जीवित रहे; कृत्वा—व्यक्त करके; उच्चैः—बहुत हद तक; मर्त्य-धर्मिणः—जन्म-मृत्यु के नियमों के अधीन;
 कथा-अवशेषाः—केवल ऐतिहासिक कथा के रूप में बचे हुए; कालेन—काल के बल से; हि—निस्सन्देह; अकृत-
 अर्थाः—जिनकी इच्छाएँ अपूर्ण रह गईं; कृताः—बनाये गये; विभो—हे स्वामी।

“पृथु, पुरुरवा, गाधि, नहुष, भरत, कार्तवीर्य अर्जुन, मान्धाता, सगर, राम, खट्वांग, धुन्धुहा, रघु, तृणबिन्दु, ययाति, शर्याति, शन्तनु, गय, भगीरथ, कुवलयाश्व, ककुत्स्थ, नैषध, नृग, हिरण्यकशिपु, वृत्र, सारे जग को रुलाने वाला रावण, नमुचि, शम्बर, भौम, हिरण्याक्ष तथा तारक के साथ साथ अन्य असुर तथा अन्यो पर शासन करने की महान् शक्ति से युक्त राजे—ये सारे के सारे ज्ञानी, शूर, सबको जीतने वाले तथा अजेय थे। तो भी हे सर्वशक्तिमान प्रभु, ये सारे राजा मुझे पाने के लिए गहन प्रयास करते हुए जीवन बिताते रहे, किन्तु काल के अधीन थे जिसने सबों को मात्र ऐतिहासिक वृत्तान्त बना दिया है। इनमें से एक भी स्थायी रूप से अपना शासन स्थापित नहीं कर सका।”

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार तथा श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर द्वारा उसी की सम्पुष्टि के अनुसार, यहाँ पर उल्लिखित राम अवतारी भगवान् रामचन्द्र नहीं हैं। पृथु महाराज को भगवान् का अवतार माना जाता है जिन्होंने सम्पूर्ण पृथ्वी पर स्वामित्व का दावा करते हुए पार्थिव राजा के गुणों को पूरी तरह प्रकट किया। किन्तु पृथु महाराज जैसे सन्त राजा पृथ्वी का नियंत्रण भगवान् की ओर से करते हैं जबकि हिरण्यकशिपु या रावण जैसे असुर, पृथ्वी का दुरुपयोग अपनी निजी इन्द्रियतृप्ति के लिए करना चाहते हैं। फिर भी सन्त स्वभाव वाले राजाओं तथा असुरों—इन दोनों ही को यह पृथ्वी छोड़नी पड़ती है। इस तरह उनकी राजनीतिक सर्वश्रेष्ठता काल के वेग से निरसित हो जाती है।

आधुनिक राजनीतिक नेता न तो सम्पूर्ण पृथ्वी का अस्थायी रूप से नियंत्रण कर सकते हैं, न ही उनका ऐश्वर्य तथा उनकी बुद्धि असीम हैं। अत्यन्त खंडित शक्ति के स्वामी बन कर, अल्प आयु को भोगते हुए और गहन बुद्धि से रहित, ये आधुनिक नेता हताशा तथा कुनिर्दिष्ट आकांक्षा के प्रतीक हैं।

कथा इमास्ते कथिता महीयसां

विताय लोकेषु यशः परेयुषाम् ।

विज्ञानवैराग्यविवक्षया विभो

वचोविभूतीर्न तु पारमार्थ्यम् ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

कथा:—कथाएँ; इमा:—ये; ते—तुमसे; कथिता:—कही गई; महीयसाम्—महान् राजाओं की; विताय—फैलाकर; लोकेषु—सारे जगत्तों में; यश:—उनका यश; परेयुषाम्—प्रस्थान कर चुके; विज्ञान—दिव्य ज्ञान; वैराग्य—तथा वैराग्य; विवक्षया—शिक्षा देने की इच्छा से; विभो—हे शक्तिशाली परीक्षित; वच:—शब्दों का; विभूती:—अलंकरण; न—नहीं; तु—लेकिन; पारम-अर्थ्यम्—अत्यन्त आवश्यक तात्पर्य का।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे बलशाली परीक्षित, मैंने इन सारे महान् राजाओं की कथाएँ तुमसे बतला दीं जिन्होंने संसार-भर में अपना यश फैलाया और फिर चले गये। मेरा असली उद्देश्य दिव्य ज्ञान तथा वैराग्य की शिक्षा देना था। राजाओं की कथाएँ इन वृत्तान्तों को शक्ति तथा ऐश्वर्य प्रदान करती हैं लेकिन वे स्वयं ज्ञान के चरम पक्ष से युक्त नहीं हैं।

तात्पर्य : चूँकि श्रीमद्भागवत की सारी कथाएँ पाठक को दिव्य ज्ञान की पूर्णता प्रदान कराने वाली हैं, अतः वे राजाओं या अन्य संसारी विषयों के माध्यम से सर्वोच्च आध्यात्मिक शिक्षाएँ देती हैं। कृष्ण के प्रसंग में सारी सामान्य कथाएँ दिव्य बन जाती हैं जिनमें पाठक को जीवन की पूर्णता प्रदान करने की शक्ति होती है।

यस्तूत्तमःश्लोकगुणानुवादः

सङ्गीयतेऽभीक्षणममङ्गलघ्नः ।

तमेव नित्यं शृणुयादभीक्षणं

कृष्णेऽमलां भक्तिमभीप्समानः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

य:—जो; तु—दूसरी ओर; उत्तमः—श्लोक—दिव्य श्लोकों द्वारा प्रशंसित भगवान् के; गुण—गुणों की; अनुवादः—वर्णन; सङ्गीयते—गाया जाता है; अभीक्षणम्—सदैव; अमङ्गल-घ्नः—अमंगल का विनाश करने वाला; तम्—उसको; एव—निस्सन्देह; नित्यम्—नियमित रूप से; शृणुयात्—सुने; अभीक्षणम्—निरन्तर; कृष्णे—कृष्ण के प्रति; अमलाम्—निर्मल; भक्तिम्—भक्ति; अभीप्समानः—इच्छा रखने वाला।

जो व्यक्ति भगवान् कृष्ण की शुद्ध भक्ति चाहता है उसे भगवान् उत्तमश्लोक के यशःपूर्ण गुणों की कथाएँ सुननी चाहिए जिनके निरन्तर कीर्तन से सारे अमंगल विनष्ट हो जाते हैं। भक्तों को नियमित दैनिक सभाओं में ऐसे श्रवण में अपने को लगाना चाहिए और दिन-भर इसी में लगे रहना चाहिए।

तात्पर्य : चूँकि कृष्ण विषयक कोई भी कथा शुभ तथा दिव्य होती है, भगवान् कृष्ण के अपने राजनीतिक तथा गैर-राजनीतिक कार्यों का सीधा वर्णन निश्चय ही सुनने के लिए सर्वश्रेष्ठ विषयवस्तु है। यहाँ पर नित्यम् शब्द कृष्ण-कथाओं के नियमित अनुशीलन का सूचक है और अभीक्षणम् शब्द ऐसे नियमित आध्यात्मिक अनुभवों के निरन्तर स्मरण का सूचक है।

श्रीराजोवाच

केनोपायेन भगवन्कलेर्दोषान्कलौ जनाः ।

विधमिष्यन्त्युपचितांस्तन्मे ब्रूहि यथा मुने ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—राजा परीक्षित ने कहा; केन—किस; उपायेन—उपाय से; भगवन्—हे प्रभु; कलेः—कलियुग के; दोषान्—बुराइयों को; कलौ—कलियुग में रहते हुए; जनाः—लोग; विधमिष्यन्ति—समूल नष्ट करेंगे; उपचितान्—संचित; तत्—वह; मे—मुझसे; ब्रूहि—कहिए; यथा—उपयुक्त रीति से; मुने—हे मुनि ।

राजा परीक्षित ने कहा : हे स्वामी, कलियुग में रहने वाले लोग किस तरह इस युग के संचित कल्मष से अपने को छुटा सकते हैं? हे महामुनि, यह मुझे बतलायें ।

तात्पर्य : राजा परीक्षित दयालु साधु शासक थे । अतः कलियुग के गर्हित गुणों के विषय में सुनने के बाद स्वभावतः उन्होंने पूछा कि इस युग में उत्पन्न लोग किस तरह इसमें निहित कल्मष से अपने को मुक्त करा सकते हैं ?

युगानि युगधर्माश्च मानं प्रलयकल्पयोः ।

कालस्येश्वररूपस्य गतिं विष्णोर्महात्मनः ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

युगानि—विश्व इतिहास के युग; युग-धर्मान्—प्रत्येक युग के विशिष्ट गुण; च—तथा; मानम्—माप; प्रलय—संहार; कल्पयोः—तथा ब्रह्माण्ड की स्थिति; कालस्य—समय का; ईश्वर-रूपस्य—भगवान् का प्रतिनिधित्व; गतिम्—चाल; विष्णोः—विष्णु की; महा-आत्मनः—परमात्मा ।

कृपया विश्व इतिहास के विभिन्न युगों, प्रत्येक युग के विशिष्ट गुणों, ब्रह्माण्ड स्थिति की अवधि तथा संहार एवं परमात्मा स्वरूप विष्णु के प्रत्यक्ष प्रतिनिधि काल की गति के बारे में बतलायें ।

श्रीशुक उवाच

कृते प्रवर्तते धर्मश्चतुष्पात्तज्जनैर्धृतः ।

सत्यं दया तपो दानमिति पादा विभोर्नृप ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; कृते—सत्ययुग में; प्रवर्तते—पाया जाता है; धर्मः—धर्म; चतुः-पात्—चार पैरों वाला; तत्—उस युग के; जनैः—लोगों के द्वारा; धृतः—धारण किया हुआ; सत्यम्—सत्य; दया—दया; तपः—तपस्या; दानम्—दान; इति—इस प्रकार; पादाः—पैर; विभोः—शक्तिशाली धर्म के; नृप—हे राजा ।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजा, प्रारम्भ में, सत्ययुग में, धर्म अपने चार अक्षत पैरों से युक्त रहता है और उस युग के लोगों द्वारा सावधानी से धारण किया जाता है । शक्तिशाली धर्म के चार पैर हैं—सत्य, दया, तपस्या तथा दान ।

तात्पर्य : जिस तरह चार ऋतुएँ होती हैं उसी तरह पृथ्वी के चार युग होते हैं जिनमें से प्रत्येक लाखों वर्षों तक चलता है । इनमें से पहला युग सत्ययुग है, जिसमें दान जैसे सद्गुणों का प्राधान्य रहता है ।

यहाँ पर *दानम्* का प्रसंग आया है, जो वस्तुतः निर्भयता तथा अन्यो को स्वतंत्रता प्रदान करना है, किसी क्षणिक आनन्द या राहत का भौतिक साधन प्रदान करना नहीं। कोई भी भौतिक “दानी” व्यवस्था अन्ततोगत्वा काल-प्रवाह द्वारा कुचल दी जायेगी। इसलिए काल की पहुँच के परे अपने नित्य अस्तित्व का साक्षात्कार ही मनुष्य को निर्भय बना सकता है और भौतिक इच्छा से छुटकारा ही असली स्वतंत्रता है क्योंकि इससे प्रकृति के नियमों के बन्धन से छूटा जा सकता है। इसलिए असली दान तो लोगों में उनकी नित्य आध्यात्मिक चेतना को जागृत करने में सहायता करना है।

धर्म को यहाँ पर *विभु* अर्थात् “शक्तिशाली” कहा गया है क्योंकि विश्वजनीन धार्मिक सिद्धान्त स्वयं भगवान् से भिन्न नहीं हैं और वे अन्ततः मनुष्य को भगवद्भाम ले जाने वाले हैं। यहाँ पर उल्लिखित गुण—सत्य, दया, तपस्या तथा दान—पवित्र जीवन के विश्वजनीन, असाम्प्रदायिक पक्ष हैं।

श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कंध में धर्म का चौथा पाँव स्वच्छता बतलाया गया है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार यह *दानम्* शब्द की वर्तमान संदर्भ में, वैकल्पिक परिभाषा है।

सन्तुष्टाः करुणा मैत्राः शान्ता दान्तास्तिक्ष्वः ।

आत्मारामाः समदृशः प्रायशः श्रमणा जनाः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

सन्तुष्टाः—आत्मतुष्ट; करुणाः—दयालु; मैत्राः—मैत्री भाव वाले; शान्ताः—शान्त; दान्ताः—आत्मसंयमी; तितिक्ष्वः—सहिष्णु; आत्म-आरामाः—भीतर से आनन्दित; सम-दृशः—समदृष्टि रखने वाला; प्रायशः—अधिकांशतः; श्रमणाः—(आत्म-साक्षात्कार के लिए) उद्योगशील; जनाः—लोग।

सत्ययुग के लोग प्रायः आत्मतुष्ट, दयालु, सबों के मित्र, शान्त, गम्भीर तथा सहिष्णु होते हैं। वे अन्तःकरण से आनन्द लेने वाले, सभी वस्तुओं को एक-सा देखने वाले तथा आध्यात्मिक सिद्धि के लिए सदैव उद्योगशील होते हैं।

तात्पर्य : *सम-दर्शन* अर्थात् समान दृष्टि का आधार है सारी भौतिक विविधता के पीछे तथा सारे जीवों के भीतर भगवान् की अनुभूति।

त्रेतायां धर्मपादानां तुर्यांशो हीयते शनैः ।

अधर्मपादैरनृतहिंसासन्तोषविग्रहैः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

त्रेतायाम्—द्वितीय युग में; धर्म-पादानाम्—धर्म के पैरों का; तुर्य—एक चौथाई; अंशः—अंश; हीयते—नष्ट हो जाता है; शनैः—धीरे धीरे; अधर्म-पादैः—अधर्म के पैरों द्वारा; अनृत—झूठ; हिंसा—हिंसा; असन्तोष—असंतोष; विग्रहैः—तथा झगड़े से, कलह से।

त्रेतायुग में अधर्म के चार पैरों—झूठ, हिंसा, असंतोष तथा कलह—के प्रभाव से धर्म का प्रत्येक पैर क्रमशः एक चौथाई क्षीण हो जाता है।

तात्पर्य : झूठ से सत्य क्षीण होता है, हिंसा से दया, असंतोष से तपस्या और कलह से दान तथा स्वच्छता क्षीण होते हैं ।

तदा क्रियातपोनिष्ठा नातिहिंसा न लम्पटाः ।

त्रैवर्गिकास्त्रयीवृद्धा वर्णा ब्रह्मोत्तरा नृप ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

तदा—तब (त्रेतायुग में); क्रिया—कर्मकाण्ड; तपः—तथा तप के प्रति; निष्ठाः—अनुरक्ति; न अति-हिंसाः—अधिक उग्र नहीं; न लम्पटाः—मनमानी इन्द्रियतृप्ति चाहने वाले; त्रै-वर्गिकाः—धर्म, अर्थ तथा इन्द्रियतृप्ति के तीन सिद्धान्तों में रुचि रखने वाले; त्रयी—तीन वेदों के द्वारा; वृद्धाः—सम्पन्न बने; वर्णाः—समाज की चार श्रेणियाँ; ब्रह्म-उत्तराः—प्रायः ब्राह्मण; नृप—हे राजा ।

त्रेतायुग में लोग कर्मकाण्ड तथा कठिन तपस्या में लगे रहते हैं। वे न तो अत्यधिक उग्र होते हैं न ऐन्द्रिय आनन्द के पीछे अत्यधिक कामुक होते हैं। उनकी रुचि मुख्यतः धर्म, आर्थिक विकास तथा नियमित इन्द्रियतृप्ति में रहती है और वे तीन वेदों की संस्तुतियों का पालन करते हुए सम्पन्नता प्राप्त करते हैं। हे राजा, यद्यपि इस युग में समाज में चार पृथक्-पृथक् श्रेणियाँ (वर्ण) उत्पन्न हो जाती हैं, किन्तु अधिकांश लोग ब्राह्मण होते हैं।

तपःसत्यदयादानेष्वर्धं ह्रस्वति द्वापरे ।

हिंसातुष्ट्यनृतद्वेषैर्धर्मस्याधर्मलक्षणैः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

तपः—तपस्या; सत्य—सत्य; दया—दया; दानेषु—तथा दान का; अर्धम्—अर्धम्; ह्रस्वति—घट जाता है; द्वापरे—द्वापर युग में; हिंसा—हिंसा; अतुष्टि—असंतोष; अनृत—झूठ; द्वेषैः—तथा घृणा से; धर्मस्य—धर्म का; अधर्म-लक्षणैः—अधर्म के लक्षणों से।

द्वापर युग में तपस्या, सत्य, दया तथा दान के धार्मिक गुण अपने अधार्मिक विलोम अंशों—असंतोष, असत्य, हिंसा तथा शत्रुता—के द्वारा घट कर आधे हो जाते हैं।

यशस्विनो महाशीलाः स्वाध्यायाध्ययने रताः ।

आध्याः कुटुम्बिनो ह्यष्टा वर्णाः क्षत्रद्विजोत्तराः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

यशस्विनः—यश के लिए इच्छुक; महा-शीलाः—नेक; स्वाध्याय-अध्ययने—वैदिक वाङ्मय के अध्ययन में; रताः—लीन; आध्याः—ऐश्वर्य से युक्त; कुटुम्बिनः—बड़े-बड़े परिवारों वाले; ह्यष्टाः—प्रसन्न; वर्णाः—समाज की चार श्रेणियाँ; क्षत्र-द्विज-उत्तराः—प्रायः क्षत्रियों तथा ब्राह्मणों की प्रधानता।

द्वापर युग में लोग यश के भूखे तथा अत्यन्त नेक होते हैं। वे वेदाध्ययन में अपने को लगाते हैं, प्रचुर ऐश्वर्य वाले होते हैं, बड़े-बड़े परिवारों वाले होते हैं और जीवन का ओजपूर्वक आनन्द लूटते हैं। चारों वर्णों में से क्षत्रिय तथा ब्राह्मण ही सर्वाधिक संख्या में होते हैं।

कलौ तु धर्मपादानां तुर्यांशोऽधर्महेतुभिः ।

एधमानैः क्षीयमाणो ह्यन्ते सोऽपि विनङ्क्ष्यति ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

कलौ—कलियुग में; तु—तथा; धर्म-पादानाम्—धर्म के पैरों का; तुर्य-अंशः—एक चौथाई; अधर्म—अधर्म के; हेतुभिः—सिद्धान्तों से; एधमानैः—बढ़ने से; क्षीयमाणः—घटते हुए; हि—निस्सन्देह; अन्ते—अन्तमें; सः—वह चतुर्थांश; अपि—भी; विनङ्क्ष्यति—नष्ट हो जायेगा ।

कलियुग में धार्मिक सिद्धान्तों का केवल एक चौथाई शेष रहता है। और यह अवशेष भी अधर्म के सदैव बढ़ने के कारण लगातार घटता जायेगा और अन्त में नष्ट हो जायेगा।

तस्मिन्लुब्धा दुराचारा निर्दयाः शुष्कवैरिणः ।

दुर्भगा भूरितर्षाश्च शूद्रदासोत्तराः प्रजाः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

तस्मिन्—उस युग में; लुब्धाः—लालची; दुराचाराः—बुरे आचरण वाले; निर्दयाः—निर्दयी; शुष्क-वैरिणः—व्यर्थ झगड़ा करने के लिए उद्यत; दुर्भगाः—अभागे; भूरि-तर्षाः—अनेक प्रकार की लालसाओं से त्रस्त; च—तथा; शूद्र-दास-उत्तराः—प्रमुखतया निम्न जाति के श्रमिक तथा बर्बर; प्रजाः—लोग ।

कलियुग में लोग लोभी, दुराचारी तथा निर्दयी होते हैं और वे बिना कारण ही एक-दूसरे से लड़ते-झगड़ते हैं। कलियुग के लोग अभागे तथा भौतिक इच्छाओं से त्रस्त होकर, प्रायः सभी शूद्र तथा बर्बर होते हैं।

तात्पर्य : इस युग में हम देख सकते हैं कि अधिकांश लोग श्रमिक, क्लर्क, मछुवारे, कारीगर या शूद्र वर्ग के अन्तर्गत अन्य प्रकार के कर्मी हैं। प्रबुद्ध भगवद्भक्तों तथा नेक राजनीतिक नेताओं का सर्वथा अभाव है और स्वतंत्र व्यापारियों तथा किसानों का भी लोप हो रहा है क्योंकि बड़े-बड़े व्यापार के संघटन उन्हें लगातार अधीनस्थ कर्मचारियों में परिणत करते जा रहे हैं। पृथ्वी के विविध भागों में पहले से बर्बर तथा अर्ध-बर्बर लोग बसे हुए हैं जिससे सारी स्थिति अत्यन्त खतरनाक तथा धूमिल हो रही है। कृष्णभावनामृत आन्दोलन में वर्तमान निराशाप्रद स्थिति को सुधारने की शक्ति प्राप्त है। घोर कलियुग के लिए यही एकमात्र आशा है।

सत्त्वं रजस्तम इति दृश्यन्ते पुरुषे गुणाः ।

कालसञ्चोदितास्ते वै परिवर्तन्त आत्मनि ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

सत्त्वम्—सतो; रजः—रजो; तमः—तमो; इति—इस प्रकार; दृश्यन्ते—देखे जाते हैं; पुरुषे—पुरुष में; गुणाः—गुण; काल-सञ्चोदिताः—काल से प्रेरित; ते—वे; वै—निस्सन्देह; परिवर्तन्ते—परिवर्तन को प्राप्त होते हैं; आत्मनि—मन के भीतर ।

सतो, रजो तथा तमोगुण, जिनके रूपान्तर पुरुष के मन के भीतर देखे जाते हैं, काल की शक्ति से गतिमान होते हैं।

तात्पर्य : इन श्लोकों में वर्णित चारों युग भौतिक प्रकृति के विभिन्न गुणों की अभिव्यक्तियाँ हैं। सत्ययुग में भौतिक सतो गुण (अच्छाई) का प्राधान्य होता है और कलियुग तमोगुण की प्रधानता को प्रकट करता है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार प्रत्येक युग में अन्य तीन युग यदाकदा उपयुगों के रूप में प्रकट होते हैं। इस तरह सत्ययुग में भी तमोगुणी राक्षस प्रकट हो सकता है और कलियुग में, कुछ काल तक, सर्वोच्च धर्म के सिद्धान्त पल्लवित हो सकते हैं। जैसाकि *श्रीमद्भागवत* में वर्णन हुआ है, तीनों गुण सर्वत्र तथा सभी वस्तुओं में उपस्थित रहते हैं लेकिन प्रधान गुण या गुणों का मेल किसी भौतिक घटना के सामान्य आचरण को निश्चित करता है। इसलिए प्रत्येक युग में तीनों गुण विभिन्न अनुपातों में पाये जाते हैं। अच्छाई (सत्य), काम (त्रेता) तथा काम एवं अज्ञान (द्वापर) अथवा अज्ञान(कलि) द्वारा सूचित होने वाला युग विशेष अन्य युगों में भी पाया जाता है।

प्रभवन्ति यदा सत्त्वे मनोबुद्धीन्द्रियाणि च ।

तदा कृतयुगं विद्याज्ञाने तपसि यद्गुचिः ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

प्रभवन्ति—प्रधान रूप से प्रकट होते हैं; यदा—जब; सत्त्वे—सतो गुण में; मनः—मन; बुद्धि—बुद्धि; इन्द्रियाणि—इन्द्रियाँ; च—तथा; तदा—तब; कृत-युगम्—कृतयुग में; विद्यात्—समझा जाना चाहिए; ज्ञाने—ज्ञान में; तपसि—तथा तपस्या में; यत्—जब; रुचिः—रुचि।

जब मन, बुद्धि तथा इन्द्रियाँ पूरी तरह से सतो गुण में स्थित हैं, तो उस काल को सत्ययुग समझना चाहिए। तब लोग ज्ञान तथा तपस्या में रुचि लेते हैं।

तात्पर्य : कृत शब्द का अर्थ है “किया हुआ”। इस तरह सत्ययुग में सारे धार्मिक कृत्य ढंग से सम्पन्न किये जाते हैं और लोग आध्यात्मिक ज्ञान तथा तपस्या में पर्याप्त रुचि लेते हैं। यहाँ तक कि कलियुग में भी जो लोग सात्विक होते हैं, वे आध्यात्मिक ज्ञान के अनुशीलन तथा नियमित तपस्या करने में रुचि लेते हैं। यह दिव्य अवस्था उसके लिए सम्भव है, जिसने यौन-इच्छा को जीत लिया हो।

यदा कर्मसु काम्येषु भक्तिर्यशसि देहिनाम् ।

तदा त्रेता रजोवृत्तिरिति जानीहि बुद्धिमन् ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

यदा—जब; कर्मसु—कर्म में; काम्येषु—स्वार्थ पर आधारित; भक्तिः—भक्ति; यशसि—सम्मान में; देहिनाम्—देहधारी आत्माओं के; तदा—तब; त्रेता—त्रेतायुग; रजः-वृत्तिः—राजसिक कार्यों की प्रधानता; इति—इस तरह; जानीहि—जानो; बुद्धि-मन्—हे बुद्धिमान राजा परीक्षित।

हे परम बुद्धिमान, जब बद्धजीव अपने कर्मों के प्रति समर्पित तो होते हैं किन्तु उनमें बाह्य मनोभाव पाये जाते हैं और वे निजी प्रतिष्ठा की खोज करते हैं, तो तुम यह जान लो कि ऐसी स्थिति त्रेतायुग की है, जिसमें राजसिक कर्मों की प्रधानता होती है।

यदा लोभस्त्वसन्तोषो मानो दम्भोऽथ मत्सरः ।
कर्मणां चापि काम्यानां द्वापरं तद्रजस्तमः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

यदा—जब; लोभः—लोभ; तु—निस्सन्देह; असन्तोषः—असन्तोष; मानः—मिथ्या अहंकार; दम्भः—दिखावा; अथ—
तथा; मत्सरः—ईर्ष्या; कर्मणाम्—कर्मों का; च—तथा; अपि—भी; काम्यानाम्—स्वार्थी; द्वापरम्—द्वापर युग; तत्—
वह; रजः-तमः—रजो तथा तमोगुण के मिश्रण की प्रधानता से।

जब लोभ, असन्तोष, मिथ्या अहंकार, दिखावा तथा ईर्ष्या प्रधान बन जाते हैं और साथ में स्वार्थपूर्ण कार्यों के लिए आकर्षण होता है, तो ऐसा काल द्वापर युग है, जिसमें रजो तथा तमोगुण के मिश्रण की प्रधानता होती है।

यदा मायानृतं तन्द्रा निद्रा हिंसा विषादनम् ।
शोकमोहौ भयं दैन्यं स कलिस्तामसः स्मृतः ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

यदा—जब; माया—धोखा; अनृतम्—झूठी वाणी; तन्द्रा—आलस्य; निद्रा—नींद तथा नशा; हिंसा—हिंसा; विषादनम्—
विषाद; शोक—शोक; मोहौ—तथा मोह; भयम्—डर; दैन्यम्—दरिद्रता; सः—वह; कलिः—कलियुग; तामसः—
तमोगुणी; स्मृतः—माना जाता है।

जब धोखा (कपट), झूठ, तन्द्रा, निद्रा, हिंसा, विषाद, शोक, मोह, भय तथा दरिद्रता का बोलबाला होता है, वह युग कलियुग अर्थात् तमोगुण का युग होता है।

तात्पर्य : कलियुग में लोग बुरी तरह से स्थूल भौतिकतावाद के प्रति अनुरक्त होते हैं। उनमें आत्म-साक्षात्कार के लिए शायद ही कोई आकर्षण होता हो।

तस्मात्क्षुद्रदृशो मर्त्याः क्षुद्रभाग्या महाशनाः ।
कामिनो वित्तहीनाश्च स्वैरिण्यश्च स्त्रियोऽसतीः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

तस्मात्—कलियुग के इन गुणों के कारण; क्षुद्र-दृशः—क्षुद्र दृष्टि; मर्त्याः—मनुष्य; क्षुद्र-भाग्याः—अभागे; महा-
अशनाः—पेटू; कामिनः—काम-वासना से युक्त; वित्त-हीनाः—सम्पत्ति से रहित; च—तथा; स्वैरिण्यः—सामाजिक
आचरण में स्वतंत्र; च—तथा; स्त्रियः—स्त्रियाँ; असतीः—असाध्वी, कुलटा।

कलियुग के दुर्गुणों के कारण मनुष्य क्षुद्र दृष्टि वाले, अभागे, पेटू, कामी तथा दरिद्र होंगे। स्त्रियाँ कुलटा होने से एक पुरुष को छोड़ कर दूसरे के पास स्वतंत्रतापूर्वक चली जायेंगी।

तात्पर्य : कलियुग में कुछ छद्म बुद्धिजीवी व्यक्तिगत स्वतंत्रता की खोज करने के कारण, यौन मिश्रण का समर्थन करते हैं। वस्तुतः शरीर के साथ आत्मा की पहचान तथा आत्मा की बजाय शरीर में “व्यक्तिगत स्वतंत्रता” की खोज निरे अज्ञान तथा काम की दासता के चिह्न हैं। जब स्त्रियाँ कुलटा हो जाती हैं, तो शादी से काम की उपज के रूप में अनेक बच्चे उत्पन्न होते हैं। ये बच्चे

प्रतिकूल परिस्थितियों में बढ़ते हैं जिससे मनोरोगी, अनभिज्ञ समाज का जन्म होता है। इसके लक्षण पहले से सारे जगत में दिख रहे हैं।

दस्यूत्कृष्टा जनपदा वेदाः पाषण्डदूषिताः ।

राजानश्च प्रजाभक्षाः शिश्नोदरपरा द्विजाः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

दस्यु-उत्कृष्टाः—चोरों का प्राधान्य होना; जन-पदाः—बसे हुए स्थान; वेदाः—वैदिक शास्त्र; पाषण्ड—नास्तिकों द्वारा; दूषिताः—दूषित; राजानः—राजनीतिक नेता; च—तथा; प्रजा-भक्षाः—जनता के भक्षक; शिश्न-उदर—जननांग तथा उदर; पराः—भक्त; द्विजाः—ब्राह्मण।

शहर चोरों से भरे होंगे, वेद नास्तिकों के द्वारा की गई मनमानी व्याख्या से दूषित किये जायेंगे, राजनीतिक नेता प्रजा का भक्षण करेंगे और तथाकथित पुरोहित तथा बुद्धिजीवी अपने पेट तथा जननांग के भक्त होंगे।

तात्पर्य : बड़े-बड़े शहर रात में असुरक्षित रहते हैं। उदाहरणार्थ, ऐसा सुना जाता है, कि रात के समय कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति न्यू यार्क के सेन्ट्रल पार्क में घूमने नहीं जायेगा क्योंकि उसे पता है कि उसका संभवतः गला घोट दिया जायेगा। बड़े-बड़े शहरों में सामान्य चोरों के अलावा जो इस युग में भरे पड़े हैं गला काटने वाले व्यापारी होते हैं, जो ग्राहकों को व्यर्थ की, बल्कि हानिकारक, वस्तुएँ खरीदने के लिए राजी कर लेते हैं। यह भलीभाँति ज्ञात है कि गो-मांस, तम्बाकू, मदिरा तथा अन्य आधुनिक सामग्रियाँ स्वास्थ्य को बर्बाद करनेवाली हैं, मानसिक स्वास्थ्य की बात जाने दें; तिस पर भी आधुनिक पूँजीपति इन वस्तुओं को बेचने के लिए तरह-तरह की मनोवैज्ञानिक युक्तियों का प्रयोग करने में संकोच नहीं करते हैं। आधुनिक शहर मानसिक तथा वायु-मण्डलीय प्रदूषण से भरे पड़े हैं और वे सामान्य नागरिकों तक के लिए असह्य हो चुके हैं।

इस श्लोक में यह भी इंगित है कि वैदिक शास्त्रों की शिक्षाएँ इस युग में तोड़ी-मरोड़ी जायेंगी। बड़े-बड़े विश्वविद्यालयों में हिन्दूवाद की शिक्षा दी जाती है, जिसमें भारतीय धर्म को बहुदेववादी करके बतलाया जाता है, जिसका उद्देश्य निर्विशेष मोक्ष है यद्यपि इसके विपरीत असीम प्रमाण मिलते हैं। वास्तव में सारा वैदिक वाङ्मय एक है, जैसाकि *भगवद्गीता* (१५.१५) में स्वयं भगवान् कृष्ण ने कहा है—*वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः*—सारे वेदों द्वारा मुझे ही जानना होता है। सारे वैदिक वाङ्मय का उद्देश्य परम पुरुष परब्रह्म विष्णु या कृष्ण के विषय में हमें प्रबुद्ध करना है। यद्यपि ईश्वर अनेक नामों से जाना जाता है और अनेक रूपों में प्रकट होता है, फिर भी वह एक है और पुरुष है। किन्तु कलियुग में यह असली वैदिक ज्ञान गुप्त है।

इस श्लोक में शुकदेव चतुराई से कहते हैं कि, “राजनीतिक नेता जनता को खा जायेंगे और तथाकथित पुरोहित तथा बुद्धिजीवी अपने पेट तथा जननांग के भक्त होंगे।” यह दुखद कथन कितना सटीक बैठता है!

अव्रता बटवोऽशौचा भिक्षवश्च कुटुम्बिनः ।

तपस्विनो ग्रामवासा न्यासिनोऽत्यर्थलोलुपाः ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

अव्रता:—अपने व्रतों को न कर पाने वाले; बटवः—ब्रह्मचारी; अशौचा:—अस्वच्छ; भिक्षवः—भीख माँगने को उन्मुख; च—तथा; कुटुम्बिनः—गृहस्थ जन; तपस्विनः—जंगल में जाकर तपस्या करने वाले; ग्राम-वासा:—ग्रामवासी; न्यासिनः—संन्यासी; अत्यर्थ-लोलुपाः—धनके लिए अत्यधिक लालची ।

ब्रह्मचारी अपने व्रतों को सम्पन्न नहीं कर सकेंगे और सामान्यतया अस्वच्छ रहेंगे। गृहस्थ लोग भिखारी बन जायेंगे; वानप्रस्थी गाँवों में रहेंगे और संन्यासी लोग धन के लालची बन जायेंगे।

तात्पर्य : कलियुग में ब्रह्मचर्य एक तरह से लुप्त ही है। अमेरिका में अनेक बालक-विद्यालयों में सहशिक्षा दी जाती है क्योंकि युवा पुरुष विलासी युवतियों की संगति के बिना रहने से इंकार करते हैं। यही नहीं, हमने स्वयं देखा है कि समूचे पाश्चात्य जगत में छात्रावास सबसे गन्दे स्थान हैं जैसाकि *अशौचाः* शब्द से यहाँ भविष्यवाणी की गई है।

जहाँ तक गृहस्थ भिक्षुओं की बात है, जब भगवद्भक्त द्वार-द्वार जाकर दिव्य साहित्य बाँटते तथा ईश्वर की महिमा के प्रचारार्थ दान माँगते हैं, तो गृहस्थ लोग चिढ़ कर कहते हैं, “कोई मुझे दान दे।” कलियुग में गृहस्थ लोग दानी प्रवृत्ति वाले नहीं हैं। प्रत्युत अपनी दरिद्र मनोवृत्ति के कारण साधुओं के पहुँचने पर चिढ़ जाते हैं।

वैदिक संस्कृति में पचास वर्ष की आयु में, दम्पति तपस्वी जीवन तथा आध्यात्मिक सिद्धि के लिए तीर्थस्थानों में जाकर रहते हैं। किन्तु अमरीका जैसे देशों में विश्राम नगरियाँ बना दी गई हैं जिनमें बूढ़े लोग गोल्फ, पिंगपोंग और शफलबोर्ड जैसे खेल खेलने तथा प्रेमालाप करने के दयनीय प्रयासों में अपने जीवन के अन्तिम वर्षों को गँवाकर, अपने आप को मूर्ख बनाते हैं यद्यपि उनके शरीर जर्जर होते हैं और मन बूढ़े हो रहे होते हैं। जीवन के अन्तिम दिनों का यह शर्मनाक दुरुपयोग मानव जीवन के असली उद्देश्य को स्वीकार न करने की प्रबल अनिच्छा का सूचक है और निश्चित रूप से ईश्वर के प्रति अपराध है।

न्यासिनोऽत्यर्थलोलुपाः शब्द सूचित करते हैं कि करिश्मा दिखाने वाले तथा बिना करिश्मा वाले धार्मिक नेता अपने को पैगम्बर, सन्त तथा अवतार घोषित करेंगे जिससे अबोध जनता को ठग कर अपना बैक-खाता भर सकें। इसीलिए इस्कान सारे विश्व में प्रामाणिक ब्रह्मचर्य जीवन, धार्मिक गृहस्थ जीवन, प्रतिष्ठित तथा प्रगतिशील अवकाश-काल तथा असली आध्यात्मिक अगुवाई स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील है। ९ मई १९८२ को हमने ब्राजील के रायोडि जनीरो जैसे विलासी शहर में तीन युवकों को, जिनमें से दो ब्राजील के निवासी तथा एक अमरीकी है, इस आशा के साथ संन्यास प्रदान किया है कि वे संन्यास के कठिन व्रत को विश्वसनीय ढंग से पूरा करेंगे और दक्षिण अमेरिका में सही आध्यात्मिक अगुवाई करेंगे।

ह्रस्वकाया महाहारा भूर्यपत्या गतह्रियः ।

शश्वत्कटुकभाषिण्यश्चौर्यमायोरुसाहसाः ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

ह्रस्व-कायाः—नाटे शरीर वाली; महा-आहाराः—अत्यधिक खाने वाली; भूरि-अपत्याः—अनेक सन्तानों वाली; गत-ह्रियः—बेशर्म; शश्वत्—निरन्तर; कटुक—कटु, कड़वा; भाषिण्यः—बोलने वाली; चौर्य—चोरी की प्रवृत्ति वाली; माया—कपट; उरु-साहसाः—तथा अत्यधिक साहस ।

स्त्रियों का आकार काफी छोटा हो जायेगा और वे अधिक भोजन करेंगी, अधिक सन्तानें उत्पन्न करेंगी जिनका पालन-पोषण करने में वे अक्षम होंगी और सारी लाज खो बैठेंगी। वे सदैव कड़वा बोलेंगी और चोरी, कपट तथा अनियंत्रित साहस के गुण प्रदर्शित करेंगी।

पणयिष्यन्ति वै क्षुद्राः किराटाः कूटकारिणः ।

अनापद्यपि मंस्यन्ते वार्ता साधु जुगुप्सिताम् ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

पणयिष्यन्ति—व्यापार में लगेंगे; वै—निस्सन्देह; क्षुद्राः—क्षुद्र; किराटाः—व्यापारी; कूट-कारिणः—ठगी में लगे हुए; अनापदि—जब कोई आपात् काल न हो; अपि—भी; मंस्यन्ते—मानेंगे; वार्ताम्—वृत्ति, पेशा; साधु—उत्तम; जुगुप्सिताम्—वास्तव में घृणित ।

व्यापारी लोग क्षुद्र व्यापार में लगे रहेंगे और धोखाधड़ी से धन कमायेंगे। आपात् काल न होने पर भी लोग किसी भी अधम पेशे को अपनायेंगे।

तात्पर्य : यद्यपि अन्य पेशे उपलब्ध रहते हैं किन्तु लोग कोयला-खानों, कसाई-घरों, इस्पात के कारखानों, मरुस्थलों, तैरते हुए तेल निकालने के संयंत्रों, पनडुब्बियों तथा इसी तरह के अन्य घृणित स्थानों पर कार्य करने से नहीं हिचकिचाते। जैसाकि यहाँ बताया गया है, व्यापारी लोग धोखाधड़ी तथा झूठ बोलने को व्यापार के लिए उचित मानेंगे। ये सभी कलियुग के लक्षण हैं।

पतिं त्यक्ष्यन्ति निर्द्रव्यं भृत्या अप्यखिलोत्तमम् ।

भृत्यं विपन्नं पतयः कौलं गाश्चापयस्विनीः ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

पतिम्—स्वामी को; त्यक्ष्यन्ति—छोड़ देंगे; निर्द्रव्यम्—धन से रहित; भृत्याः—नौकर; अपि—भी; अखिल-उत्तमम्—गुणों में सर्वश्रेष्ठ; भृत्यम्—नौकर को; विपन्नम्—अक्षम; पतयः—स्वामी; कौलम्—पीढ़ियों से परिवार से सम्बद्ध; गाः—गौवें; च—तथा; अपयस्विनीः—जिन्होंने दूध देना बन्द कर दिया है।

नौकर उस मालिक को छोड़ देंगे जिसकी सम्पत्ति नष्ट हो चुकी है भले ही वह मालिक सन्त उत्कृष्ट आचरण का क्यों न हो। मालिक भी अक्षम नौकर को त्याग देंगे भले ही वह नौकर पीढ़ियों से उस परिवार में क्यों न रहा हो। दूध न देने वाली गौवों को या तो छोड़ दिया जायेगा या मार दिया जायेगा।

तात्पर्य : भारत में गाय को पवित्र माना जाता है, इसलिए नहीं कि भारत के लोग

अन्धविश्वासी भक्त हैं अपितु इसलिए कि हिन्दू अच्छी तरह समझते हैं कि गाय माता है। बचपन में, हम सभी गाय के दूध से पले हैं इसलिए गाय हमारी माताओं में से है। निस्सन्देह, किसी की माता पवित्र होती है, अतएव हमें पवित्र गाय की हत्या नहीं करनी चाहिए।

पितृभ्रातृसुहृन्जातीन्हित्वा सौरतसौहृदाः ।

ननान्दश्यालसंवादा दीनाः स्त्रैणाः कलौ नराः ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

पितृ—अपने पिता; भ्रातृ—भाइयों; सुहृत्—शुभचिन्तक मित्रों; ज्ञातीन्—तथा निकट सम्बन्धियों को; हित्वा—छोड़ कर; सौरत—यौन-सम्बन्ध पर आधारित; सौहृदाः—मित्रता की धारणा; ननान्द—श्यालियों के साथ; श्याल—तथा साले; संवादाः—लगातार संगति करते हुए; दीनाः—कंजूस; स्त्रैणाः—स्त्री-भक्त; कलौ—कलियुग में; नराः—पुरुष।

कलियुग में मनुष्य कंजूस तथा स्त्रियों द्वारा नियंत्रित होंगे। वे अपने पिता, भाई, अन्य सम्बन्धियों तथा मित्रों को त्याग कर साले तथा सालियों की संगति करेंगे। इस तरह उनकी मैत्री की धारणा नितान्त यौन-सम्बन्धों पर आधारित होगी।

शूद्राः प्रतिग्रहीष्यन्ति तपोवेषोपजीविनः ।

धर्मं वक्ष्यन्त्यधर्मज्ञा अधिरुह्योत्तमासनम् ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

शूद्राः—निम्न जाति के श्रमिक; प्रतिग्रहीष्यन्ति—धार्मिक दान लेंगे; तपः—तपस्या का दिखावा करके; वेष—तथा साधु का वेश बनाकर; उपजीविनः—अपनी जीविका कमाते हुए; धर्मम्—धर्म के सिद्धान्तों के विषय में; वक्ष्यन्ति—बोलेंगे; अधर्म-ज्ञाः—धर्म से अनभिज्ञ; अधिरुह्य—चढ़ कर; उत्तम-आसनम्—उच्च आसन पर।

असंस्कृत लोग भगवान् के नाम पर दान लेंगे और तपस्या का स्वाँग रचाकर तथा साधु का वेश धारण करके अपनी जीविका चलायेंगे। धर्म न जानने वाले उच्च आसन पर बैठेंगे और धार्मिक सिद्धान्तों का प्रवचन करने का ढोंग रचेंगे।

तात्पर्य : यहाँ पर कुत्सित गुरुओं, स्वामियों, पुरोहितों इत्यादि का खुल कर वर्णन हुआ है।

नित्यं उद्विग्नमनसो दुर्भिक्षकरकर्षिताः ।

निरन्त्रे भूतले राजननावृष्टिभयातुराः ॥ ३९ ॥

वासोऽन्नपानशयनव्यवायस्नानभूषणैः ।

हीनाः पिशाचसन्दर्शा भविष्यन्ति कलौ प्रजाः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

नित्यम्—निरन्तर; उद्विग्न—अशान्त; मनसः—उनके मन; दुर्भिक्ष—अकाल; कर—तथा टैक्स से; कर्षिताः—दुर्बल; निरन्त्रे—जब खाने को भोजन न मिले; भू-तले—पृथ्वी पर; राजन्—हे राजा परीक्षित; अनावृष्टि—सूखे का; भय—भय के कारण; आतुराः—उद्विग्न; वासः—वस्त्र; अन्न—भोजन; पान—पेय; शयन—विश्राम; व्यवाय—यौन; स्नान—स्नान; भूषणैः—तथा निजी आभूषणों से; हीनाः—रहित; पिशाच-सन्दर्शाः—पिशाचों की तरह लगने वाले; भविष्यन्ति—होंगे; कलौ—कलियुग में; प्रजाः—लोग।

कलियुग में लोगों के मन सदैव अशान्त रहेंगे। हे राजा, वे अकाल तथा कर-भार से दुर्बल हो जायेंगे और सूखे के भय से सदैव विचलित रहेंगे। उन्हें पर्याप्त वस्त्र, भोजन तथा पेय का अभाव रहेगा; वे न तो ठीक से विश्राम कर सकेंगे, न संभोग या स्नान कर सकेंगे। उनके पास अपने शरीरों को सुसज्जित करने के लिए आभूषण नहीं होंगे। वस्तुतः कलियुग के लोग धीरे-धीरे पिशाच दिखने लगेंगे।

तात्पर्य : यहाँ पर वर्णित लक्षण पहले ही अनेक देशों में प्राप्य हैं और धीरे-धीरे ये अन्य स्थानों में फैल जायेंगे जो अभक्ति तथा भौतिकतावाद में फँसे हुए हैं।

कलौ काकिणिकेऽप्यर्थे विगृह्य त्यक्तसौहदाः ।

त्यक्ष्यन्ति च प्रियान्प्राणान्हनिष्यन्ति स्वकानपि ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

कलौ—कलियुग में; काकिणिके—छोटे-से सिक्के के; अपि—भी; अर्थ—हेतु; विगृह्य—शत्रुता उत्पन्न करके; त्यक्त—छोड़ते हुए; सौहदाः—मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों; त्यक्ष्यन्ति—त्याग देंगे; च—तथा; प्रियान्—प्रिय; प्राणान्—अपने जीवनो को; हनिष्यन्ति—मारेंगे; स्वकान्—अपने सगों को; अपि—भी।

कलियुग में लोग कुछ ही सिक्कों के लिए शत्रुता ठान लेंगे। वे सारे मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों को त्याग कर स्वयं मरने तथा अपने ही सम्बन्धियों को मार डालने पर उतारू हो जायेंगे।

न रक्षिष्यन्ति मनुजाः स्थविरौ पितरावपि ।

पुत्रान्भार्या च कुलजां क्षुद्राः शिशनोदरंभराः ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

न रक्षिष्यन्ति—रक्षा नहीं करेंगे; मनुजाः—मनुष्य; स्थविरौ—वृद्ध; पितरौ—माता-पिता; अपि—भी; पुत्रान्—बच्चों को; भार्याम्—पत्नी को; च—भी; कुल-जाम्—अच्छे परिवार में जन्मे; क्षुद्राः—नीच; शिशन-उदरम्—अपने जननांगों तथा पेट को; भराः—भरण करते हुए।

लोग अपने बूढ़े माता-पिता, अपने बच्चों या अपनी सम्मान्य पत्नियों की रक्षा नहीं कर सकेंगे। वे अत्यन्त पतित होकर अपने पेटों तथा जननांगों की तुष्टि में लगे रहेंगे।

तात्पर्य : इस युग में अनेक लोग अपने वृद्ध माता-पिता को एकान्त और प्रायः अनोखे, वृद्धावस्था निकेतनों में भेज रहे हैं यद्यपि उनके वृद्ध माता-पिता ने अपने बच्चों की सेवा करने में अपना सारा जीवन बिता दिया था।

इस युग में तरुण बच्चों को भी अनेक प्रकार से सताया जाता है। हाल के वर्षों में बच्चों में आत्महत्या की घटनाओं में नाटकीय अभिवृद्धि हुई है क्योंकि उनका जन्म प्रेमी धार्मिक माता-पिता के यहाँ नहीं, अपितु अधम, स्वार्थी स्त्री-पुरुषों से होता है। वस्तुतः बच्चे प्रायः इसलिए जन्म लेते हैं क्योंकि गर्भनिरोध की गोली या ऐसी ही कोई और गर्भ निरोधक युक्ति ठीक से काम नहीं करती। ऐसी परिस्थितियों में माता-पिता के लिए अपने बच्चों का सही मार्गदर्शन कर पाना अत्यन्त कठिन है। आध्यात्मिक विद्या से सामान्यतया अनजान माता-पिता अपने बच्चों को मुक्ति के मार्ग

पर नहीं ले जा पाते और इस तरह पारिवारिक जीवन में अपना प्रारम्भिक उत्तरदायित्व नहीं पूरा कर पाते।

जैसी कि इस श्लोक में भविष्यवाणी की गई है, वर्ण-संकरता अति सामान्य हो चुकी है और लोग सामान्य रूप से भोजन तथा यौन की ही चिन्ता करते हैं क्योंकि वे परब्रह्म को जानने की अपेक्षा इन्हें अधिक महत्त्वपूर्ण समझते हैं।

कलौ न राजन्जगतां परं गुरुं

त्रिलोकनाथानतपादपङ्कजम् ।

प्रायेण मर्त्या भगवन्तमच्युतं

यक्ष्यन्ति पाषण्डविभिन्नचेतसः ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

कलौ—कलियुग में; न—नहीं; राजन्—हे राजा; जगताम्—ब्रह्माण्ड के; परम्—परम; गुरुम्—गुरु को; त्रि-लोक—तीनों लोकों के; नाथ—विविध स्वामियों द्वारा; आनत—झुकाये गये; पाद-पङ्कजम्—जिनके चरणकमल; प्रायेण—प्रायः; मर्त्याः—मनुष्य; भगवन्तम्—भगवान्; अच्युतम्—अच्युत को; यक्ष्यन्ति—भेंट चढ़ायेंगे; पाषण्ड—नास्तिकता द्वारा; विभिन्न—पृथक्-पृथक्; चेतसः—बुद्धि वाले।

हे राजा, कलियुग में लोगों की बुद्धि नास्तिकता के द्वारा विचलित हो जायेगी और वे ब्रह्माण्ड के परम गुरु स्वरूप भगवान् को कभी भी उपहार नहीं चढ़ायेंगे। तीनों लोकों के नियन्ता महापुरुष तक भगवान् के चरणकमलों पर अपना शीश झुकाते हैं, किन्तु इस युग के क्षुद्र एवं दुखी लोग ऐसा नहीं करेंगे।

तात्पर्य : सारे जगत के उद्गम परब्रह्म को ढूँढने की प्रेरणा सनातन काल से विभिन्न मतों के दार्शनिकों, धर्माचार्यों तथा अन्य बुद्धिजीवियों को प्रोत्साहित करती रही है और आज भी कर रही है। किन्तु तथाकथित दर्शनों, धर्मों, मार्गों, जीवन-शैलियों का गंभीरता से विश्लेषण करने पर हम पाते हैं कि लगभग सभी का परम लक्ष्य तो निर्विशेष या निराकार हैं। किन्तु इस निर्विशेष या निराकार परब्रह्म के विचार में अनेक गम्भीर तार्किक दोष हैं। तर्कशास्त्र के सामान्य नियमों के अनुसार, किसी भी कार्य का कारण तो होना ही चाहिए। इसलिए जिसका व्यक्तित्व या कर्म न हो वह सारे व्यक्तित्व तथा कर्म का उद्गम नहीं हो सकता।

परम सत्य को दार्शनिकता का जामा पहनाने की हमारी दुर्दम प्रवृत्ति उस वस्तु को खोजने के लिए वैज्ञानिक, दार्शनिक तथा योगिक प्रयास कराती है, जिससे हर वस्तु उद्भूत होती है। यह भौतिक जगत, जो ऊपर से कार्यकारण का अनन्त जाल प्रतीत होता है, निश्चित रूप से परब्रह्म नहीं है क्योंकि भौतिक पदार्थों का वैज्ञानिक परीक्षण हमें बताता है कि भौतिक शक्ति ही विभिन्न रूपों तथा अवस्थाओं में परिणत होती है इसलिए कोई एक भौतिक सत्य अन्य सारी वस्तुओं का चरम स्रोत नहीं हो सकता।

हम यह कल्पना कर सकते हैं कि पदार्थ किसी न किसी आकार में सदैव विद्यमान रहता है।

किन्तु यह सिद्धान्त आधुनिक ब्रह्माण्ड-विदों के लिए यथा मेसाचुसेट्स इंस्टीट्यूट आफ टेकनालीजी के वैज्ञानिकों के लिए आकर्षक नहीं रहा। यदि हम यह मान भी लें कि पदार्थ सदैव से विद्यमान रहा है, तो हमें चेतना का स्रोत बताना होगा यदि हम परम सत्य की खोज के लिए अपनी दार्शनिक प्रेरणा को संतुष्ट करना चाहते हों। यद्यपि आधुनिक संकल्पनावादी लोग कहते हैं कि पदार्थ के अलावा कुछ भी सत्य नहीं है किन्तु लोगों का यह सामान्य अनुभव है कि चेतना पत्थर, पेंसिल या जल जैसी कोई वस्तु नहीं है। जागरूकता चेतना की वस्तुओं की तुलना में अपने आप में कोई भौतिक सत्ता नहीं है अपितु यह अनुभूति तथा ज्ञान की विधि है। यद्यपि पदार्थ तथा चेतना के बीच अन्योन्याश्रित सम्बन्ध के अनेक प्रमाण हैं किन्तु इसका कोई ठोस प्रमाण नहीं है कि पदार्थ चेतना का कारण है। इस तरह यह सिद्धान्त कि भौतिक जगत सदा से विद्यमान रहा है अतएव यही परम सत्य है, न तो वैज्ञानिक रूप से, न ही आन्तरिक रूप से चेतना के स्रोत को बता पाता है, जबकि चेतना हमारे जीवन का सबसे मूलभूत असली पक्ष है।

इसके अतिरिक्त, जैसाकि न्यू यार्क स्टेट विश्वविद्यालय, बिंघमटन के डा. रिचर्ड थाम्पसन ने प्रदर्शित किया है और भौतिक विज्ञान के नोबेल विजेताओं ने, उनके कार्य की प्रशंसा करते हुए, पुष्टि की है, पदार्थ के रूपान्तरण-सम्बन्धी प्रकृति के नियमों में पर्याप्त सूचना-सामग्री उपलब्ध नहीं है, जिससे हमारे तथा अन्य जीवों के शरीरों के भीतर घट रही अकल्पनीय जटिल घटनाओं पर प्रकाश पड़ सके। दूसरे शब्दों में, न केवल प्रकृति के भौतिक नियम, चेतना के अस्तित्व का कारण बता सकने में असफल रहे हैं, अपितु वे जटिल जैविक स्तर पर भौतिक तत्त्वों की पारस्परिक प्रक्रिया का स्पष्टीकरण करने में भी असमर्थ हैं। पाश्चात्य देशों के प्रथम महान् दार्शनिक सॉक्रेटिज भी, यांत्रिक सिद्धान्तों के आधार पर, अन्तिम कार्य-कारण स्थापित करने के प्रयासों पर, हताश थे।

सूर्य की किरणों की तपन तथा चमक यह प्रत्येक बुद्धिसंगत मनुष्य को संतोष दिलाती है कि इन किरणों का स्रोत सूर्य कोई अंधकारपूर्ण ठंडा मण्डल नहीं अपितु असीम तपन तथा प्रकाश का आगार है। इसी तरह सृष्टि में व्यक्ति तथा उसकी चेतना के अनेक उदाहरण यह दिखाने के लिए पर्याप्त हैं कि चेतना तथा साकार आचरण का कोई असीम आगार है।

ग्रीक दार्शनिक प्लेटो ने अपने वार्तालाप 'फिलेबस' में, तर्क किया था कि जिस प्रकार हमारे शरीर के भौतिक तत्त्व, ब्रह्माण्ड में विद्यमान भौतिक तत्त्वों के विशाल आगार से उद्धृत किए जाते हैं, उसी तरह हमारी तर्कसंगत बुद्धि भी ब्रह्माण्ड में विद्यमान महान् सृष्ट्यात्मक बुद्धि से प्राप्त की जाती है और यह परम बुद्धि विश्व-स्रष्टा भगवान् ही हैं। दुर्भाग्यवश, कलियुग में, अनेक प्रमुख विचारक इसे नहीं समझ सकते और वे उलटे, इस तथ्य से इनकार करते हैं कि हमारी निजी चेतना का स्रोत, परम सत्य, भी चेतना तथा रूप रखता है। यह उतना ही तर्कपूर्ण है जितना यह कहना कि सूर्य शीतल और अंधकारमय है।

कलियुग में कई लोग सस्ते तर्क प्रस्तुत करते हैं कि, "यदि ईश्वर के शरीर या व्यक्तित्व है, तो

इससे वह सीमित हो जाता है।” तर्क के इस असफल प्रयास में, एक योग्य शब्दावली व्यापक दृष्टि में गलत तौर पर प्रस्तुत की जाती है। हमें वास्तव में यह कहना चाहिए “यदि ईश्वर के ऐसा भौतिक शरीर अथवा भौतिक व्यक्तित्व उन लोगों की भाँति होता जिसका हमें अनुभव है, तो वह सीमित होगा।”

भगवद्गीता, श्रीमद्भागवत तथा अन्य वैदिक ग्रंथ हमें शिक्षा देते हैं कि परब्रह्म का दिव्य रूप तथा व्यक्तित्व असीम है। स्पष्ट है कि सचमुच ही अनन्त होने के लिए ईश्वर को न केवल मात्रा की दृष्टि से अपितु गुणात्मक दृष्टि से असीम होना चाहिए। दुर्भाग्यवश, हमारे मशीनी तथा औद्योगिक युग में हम अनन्तता को मात्रात्मक रूप में परिभाषित करते हैं। इस तरह हम व्यक्ति के गुणों की अनन्तता में उसका आवश्यक पक्ष नहीं देख पाते। दूसरे शब्दों में, ईश्वर में असीम सौन्दर्य, असीम धन, असीम बुद्धि, अनन्त रस, अनन्त करुणा, अनन्त क्रोध, इत्यादि होने चाहिए। अनन्त परम है और यदि इस संसार में किसी दृश्य वस्तु का, किसी कारण, परम की हमारी इस धारणा में समावेश नहीं है, तो वह धारणा किसी सीमित पदार्थ की है, अनन्त की बिल्कुल नहीं।

केवल कलियुग में दार्शनिक जन इतने मूर्ख हैं कि वे ईश्वर की परिभाषा भौतिकतावादी सापेक्ष विधियों से बड़े गर्व से करते हैं और अपने को प्रबुद्ध चिन्तक घोषित करते हैं। हमारा मस्तिष्क कितना ही बड़ा क्यों न हो, हममें उसे भगवान् के चरणों पर रखने की सामान्य बुद्धि होनी चाहिए।

यन्नामधेयं म्रियमाण आतुरः

पतन्स्खलन्वा विवशो गृणन्पुमान् ।

विमुक्तकर्मागल उत्तमां गतिं

प्राप्नोति यक्ष्यन्ति न तं कलौ जनाः ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

यत्—जिसका; नामधेयम्—नाम; म्रियमाणः—मर रहा व्यक्ति; आतुरः—पीड़ित; पतन्—गिरता; स्खलन्—शब्द रुद्ध होते; वा—अथवा; विवशः—असहाय; गृणन्—कीर्तन करते; पुमान्—पुरुष; विमुक्त—मुक्त; कर्म—सकाम कर्म का; अगलः—जंजीरों से; उत्तमां—सर्वोच्च; गतिम्—लक्ष्य; प्राप्नोति—पाता है; यक्ष्यन्ति न—नहीं पूजते; तम्—उसको, भगवान् को; कलौ—कलियुग में; जनाः—लोग।

मरने वाला व्यक्ति भयभीत होकर अपने बिस्तर पर गिर जाता है। यद्यपि उसकी वाणी अवरुद्ध हुई रहती है और उसे इसका बोध नहीं रहता कि वह क्या कह रहा है, किन्तु यदि वह भगवान् का पवित्र नाम लेता है, तो कर्मफल से मुक्त हो सकता है और चरम गन्तव्य को प्राप्त कर सकता है। किन्तु तो भी कलियुग में लोग भगवान् की पूजा नहीं करेंगे।

तात्पर्य : आप घोड़े को नदी के पास तो ले जा सकते हैं किन्तु आप उसे पानी पीने को बाध्य नहीं कर सकते।

पुंसां कलिकृतान्दोषान्द्रव्यदेशात्मसम्भवान् ।

सर्वान्हरति चित्तस्थो भगवान्पुरुषोत्तमः ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

पुंसाम्—मनुष्यों को; कलि-कृतान्—कलि के प्रभाव से उत्पन्न; दोषान्—दोष; द्रव्य—पदार्थ; देश—स्थान; आत्म—तथा साक्षात् प्रकृति; सम्भवान्—पर आधारित; सर्वान्—सारे; हरति—चुरा लेता है; चित्त-स्थः—हृदय के भीतर स्थित; भगवान्—सर्वशक्तिमान प्रभु; पुरुष-उत्तमः—परम पुरुष।

कलियुग में वस्तुएँ, स्थान तथा व्यक्ति सभी प्रदूषित हो जाते हैं। किन्तु भगवान् उस व्यक्ति के जीवन से ऐसा सारा कल्मष हटा सकते हैं, जो अपने मन के भीतर भगवान् को स्थिर कर लेता है।

श्रुतः सङ्कीर्तितो ध्यातः पूजितश्चादृतोऽपि वा ।

नृणां धुनोति भगवान्हृत्स्थो जन्मायुताशुभम् ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

श्रुतः—सुना हुआ; सङ्कीर्तितः—महिमागान किया हुआ; ध्यातः—ध्यान धरा हुआ; पूजितः—पूजित; च—तथा; आदृतः—सम्मानित; अपि—भी; वा—अथवा; नृणाम्—मनुष्यों का; धुनोति—धो देता है; भगवान्—भगवान्; हृत्-स्थः—उनके हृदयों के भीतर स्थित; जन्म-अयुत—हजारों जन्मों का; अशुभम्—अशुभ कल्मष।

यदि कोई व्यक्ति हृदय के भीतर स्थित परमेश्वर के विषय में सुनता है, उनकी महिमा का गान करता है, उनका ध्यान करता है, उनकी पूजा करता है या परमेश्वर का अत्यधिक आदर करता है, तो भगवान् उसके मन से हजारों जन्मों से संचित कल्मष को दूर कर देते हैं।

यथा हेम्नि स्थितो वह्निर्दुर्वर्णं हन्ति धातुजम् ।

एवमात्मगतो विष्णुर्योगिनामशुभाशयम् ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

यथा—जिस तरह; हेम्नि—सोने में; स्थितः—स्थित; वह्निः—आग; दुर्वर्णम्—बदरंगपना; हन्ति—नष्ट कर देती है; धातु-जम्—अन्य धातुओं के कारण उत्पन्न रंग; एवम्—इसी तरह; आत्म-गतः—आत्मा में प्रवेश करके; विष्णुः—भगवान् विष्णु; योगिनाम्—योगियों का; अशुभ-आशयम्—गंदा मन।

जिस तरह सोने को गलाने पर अग्नि अन्य धातुओं की रंचमात्र उपस्थिति से उत्पन्न बदरंग को दूर कर देती है उसी तरह हृदय के भीतर स्थित भगवान् विष्णु योगियों के मन को शुद्ध कर देते हैं।

तात्पर्य : भले ही कोई व्यक्ति योग प्रणाली का अभ्यास करता हो किन्तु उसकी वास्तविक आध्यात्मिक प्रगति हृदय के भीतर स्थित भगवान् की कृपा के कारण होती है। यह उसकी तपस्या तथा ध्यान का प्रत्यक्ष फल नहीं होता। यदि कोई मूर्खतावश योग के नाम पर गर्वित हो, तो उसका आध्यात्मिक पद हास्यास्पद बन जाता है।

विद्यातपःप्राणनिरोधमैत्री-

तीर्थाभिषेकव्रतदानजप्यैः ।

नात्यन्तशुद्धिं लभतेऽन्तरात्मा

यथा हृदिस्थे भगवत्यनन्ते ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

विद्या—देवताओं की पूजा से; तपः—तपस्या; प्राण-निरोध—प्राणायाम्; मैत्री—दया; तीर्थ-अभिषेक—तीर्थ-स्नान; व्रत—कठिन व्रत; दान—दान; जप्यैः—तथा मंत्रोच्चार द्वारा; न—नहीं; अत्यन्त—पूर्ण; शुद्धिम्—शुद्धि; लभते—प्राप्त कर सकता है; अन्तः-आत्मा—मन; यथा—जिस तरह; हृदि-स्थे—हृदय के भीतर स्थित रहने पर; भगवति—भगवान् में; अनन्ते—असीम भगवान्, अनन्त।

देवपूजा, तपस्या, प्राणायाम, दया, तीर्थ-स्नान, कठिन व्रत, दान तथा विविध मंत्रों के उच्चारण से मनुष्य के मन को वैसी परम शुद्धि प्राप्त नहीं हो सकती जैसी कि हृदय के भीतर अनन्त भगवान् के प्रकट होने पर होती है।

तस्मात्सर्वात्मना राजन्हृदिस्थं कुरु केशवम् ।

प्रियमाणो ह्यवहितस्ततो यासि परां गतिम् ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

तस्मात्—इसलिए; सर्व-आत्मना—सारे प्रयास से; राजन्—हे राजा; हृदि-स्थम्—हृदय के भीतर; कुरु—करो; केशवम्—भगवान् केशव को; प्रियमाणः—मरते हुए; हि—निस्सन्देह; अवहितः—एकाग्र; ततः—तब; यासि—जा सकोगे; परम्—परम; गतिम्—गन्तव्य को।

इसलिए हे राजा, अपनी शक्ति-भर अपने हृदय में परम भगवान् केशव को स्थिर करने का प्रयास करो। यह एकाग्रता भगवान् पर बनाये रखो और अपनी मृत्यु के समय तुम निश्चित रूप से परम गन्तव्य को प्राप्त करोगे।

तात्पर्य : यद्यपि भगवान् हर एक जीव के हृदय में सदैव रहते हैं, किन्तु हृदि-स्थं कुरु केशवम् शब्द सूचित करते हैं कि हर एक को भगवान् की उपस्थिति हृदय में अनुभव करनी चाहिए और हर क्षण इस जागरूकता को बनाये रखना चाहिए। परीक्षित महाराज इस संसार को त्यागने वाले थे और वे अपने गुरु शुकदेव गोस्वामी से अन्तिम उपदेश प्राप्त कर रहे थे। राजा के आसन्न प्रयाण की दृष्टि से यह श्लोक विशेष महत्त्व रखता है।

प्रियमाणैरभिध्येयो भगवान्परमेश्वरः ।

आत्मभावं नयत्यङ्ग सर्वात्मा सर्वसंश्रयः ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

प्रियमाणैः—मरने वालों के द्वारा; अभिध्येयः—ध्यान किये गये; भगवान्—भगवान्; परम-ईश्वरः—परमेश्वर; आत्म-भावम्—अपनी असली पहचान; नयति—उन्हें ले जाती है; अङ्ग—हे राजा; सर्व-आत्मा—परमात्मा; सर्व-संश्रयः—सभी प्राणियों के आश्रय।

हे राजा, भगवान् परम नियन्ता हैं। वे परमात्मा हैं और सारे प्राणियों के परम आश्रय हैं। मरणासन्न लोगों के द्वारा ध्यान किये जाने पर वे उन्हें अपना नित्य आध्यात्मिक स्वरूप प्रकट करते हैं।

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान्गुणः ।

कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत् ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

कलेः—कलियुग के; दोष-निधेः—दोष के सागर में; राजन्—हे राजा; अस्ति—है; हि—निश्चय ही; एकः—एक; महान्—महान्; गुणः—सद्गुण; कीर्तनात्—कीर्तन से; एव—निश्चय ही; कृष्णस्य—कृष्ण-नाम के; मुक्त-सङ्गः—भवबंधन से मुक्त; परम्—दिव्य धाम को; व्रजेत्—जा सकता है।

हे राजन्, यद्यपि कलियुग दोषों का सागर है फिर भी इस युग में एक अच्छा गुण है—केवल हरे कृष्ण महामंत्र का कीर्तन करने से मनुष्य भवबन्धन से मुक्त हो जाता है और दिव्य धाम को प्राप्त होता है।

तात्पर्य : इस कलियुग के असंख्य दोषों का उल्लेख करने के बाद शुकदेव गोस्वामी अब उसके एक अच्छे पक्ष का उल्लेख करते हैं। जिस तरह एक शक्तिशाली राजा असंख्य चोरों को मार सकता है, उसी तरह एक आध्यात्मिक सद्गुण इस युग के सारे कल्मष को नष्ट कर सकता है। इस पतित युग में हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे / हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे कीर्तन करने के महत्त्व का अनुमान लगा पाना असम्भव है।

कृते यद्भ्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः ।

द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्भरिकीर्तनात् ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ

कृते—सत्ययुग में; यत्—जो; ध्यायतः—ध्यान से; विष्णुम्—एक विष्णु को; त्रेतायाम्—त्रेतायुग में; यजतः—पूजा करने से; मखैः—यज्ञ करने से; द्वापरे—द्वापर युग में; परिचर्यायाम्—भगवान् कृष्ण के चरणकमलों की पूजा करने से; कलौ—कलियुग में; तत्—वही फल (प्राप्त किया जा सकता है); हरि-कीर्तनात्—केवल हरे कृष्ण महामंत्र के कीर्तन से।

जो फल सत्ययुग में विष्णु का ध्यान करने से, त्रेतायुग में यज्ञ करने से तथा द्वापर युग में भगवान् के चरणकमलों की सेवा करने से, प्राप्त होता है, वही कलियुग में केवल हरे कृष्ण महामंत्र का कीर्तन करके प्राप्त किया जा सकता है।

तात्पर्य : ऐसा ही श्लोक विष्णु पुराण (६.२.१७) में और पद्म पुराण (उत्तर खंड ७२.२५) तथा बृहन्नारदीय पुराण (३८.१७) में भी पाया जाता है—

ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रैतायां द्वापरेर्चयन् ।

यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम् ॥

“सत्ययुग में जो ध्यान के द्वारा, त्रेता में यज्ञ करने से तथा द्वापर में कृष्ण के चरणकमलों की पूजा से प्राप्त किया जाता है, उसे कलियुग में भगवान् केशव के नाम-कीर्तन द्वारा प्राप्त किया जाता है।”

श्रील जीव गोस्वामी ने कलियुग में लोगों की पतितावस्था के विषय में ब्रह्मवैवर्त पुराण से उद्धरण दिया है—

अतः कलौ तपोयोगविद्यायज्ञादिकाः क्रियाः ।

सांगा भवन्ति न कृताः कुशलैरपि देहिभिः ॥

“इस तरह कलियुग में अत्यन्त दक्ष देहधारी आत्माओं द्वारा भी तप, योग-ध्यान, अर्चापूजन, यज्ञ के साथ साथ अन्य गौण कार्यों का अभ्यास ठीक से नहीं चल पाता।”

श्रील जीव गोस्वामी ने इस युग में हरे कृष्ण कीर्तन की आवश्यकता के विषय में *स्कन्द पुराण* के *चातुर्मास माहात्म्य* का भी उद्धरण दिया है—

तथा चैवोत्तमं लोके तपः श्रीहरिकीर्तनम् ।

कलौ युगे विशेषेण विष्णुप्रीत्यै समाचरेत् ॥

“इस तरह इस जगत में जो सर्वाधिक पूर्ण तपस्या की जानी है, वह श्री हरि के नाम का कीर्तन है। विशेष रूप से कलियुग में संकीर्तन द्वारा भगवान् विष्णु को प्रसन्न किया जा सकता है।”

निष्कर्ष यह निकला कि सारे संसार में हरे कृष्ण मंत्र का कीर्तन करने के लिए लोगों को प्रेरित करने हेतु व्यापक प्रचार की आवश्यकता है, जिससे मानव समाज को कलियुग के भयावह समुद्र से बचाया जा सके।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के बारहवें स्कन्ध के अन्तर्गत ‘भूमि गीत’ नामक तृतीय अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।